इकाई 12 मीरा का काव्य सौन्दर्य

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 मीरा की कविता का विषय
12.3 मीरा की कविता में प्रेमानुभूति और प्रेम विह्वलता का चित्रण
12.4 मीरा की भाषा
12.5 मीरा की कविता का शिल्प विधान
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास/प्रश्न

12.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने मीराकालीन समाज, नारी पराधीनता, मीरा का सामंती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, जीवन संघर्ष, मीरा की कृष्ण भक्ति तथा मीरा के विरह की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की थी। इस इकाई में हम आपको मीरा की कविता से परिचित कराने जा रहे हैं। इसे पढ़कर आप :

- मीरा की कविता की विषयगत विशेषता जान सकेंगे,
- मीरा की कविता में प्रेमानुभूति और प्रेमविह्वलता का अवलोकन कर सकेंगे, और
- मीरा की कविता की भाषागत और शिल्पगत विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

कबीर, सूर, तुलसी आदि संत कवियों के समान मीरा मूलत: भक्त हैं। उनका भावलोक आराध्य के प्रति उन्मुख नाना अनुभूतियों से सम्पन्न है। उनके अपने जीवन के सम-विषम अनुभव उसे और गहरा बनाते हैं। लोकजीवन से अकृत्रिम निकटता के चलते उनकी भाषा अर्थ की गहरी शक्ति से अधिक सक्षम और संवेद्य हो उठती है। संत समाज का निरंतर सम्पर्क भी इस अभिव्यक्ति को सहज कलात्मक सधाव प्रदान करता है तथा मीरा का सम्पूर्ण काव्य भावों की वैविध्यमय गहराई व अनूठी संप्रेष्यता से सज जाता है।

मीरा ने श्रीकृष्ण के विविध रूपों का साक्षात्कार किया है। वे उनके प्रिय, पति, सखा और उद्धारक प्रभु हैं। इसके अनुरूप ही उनके भावजगत में उज्जवल रति, निर्दोष उन्मुक्तता, भावावेश और विनय आदि का प्रकाश दिखाई देता है। कृष्ण के प्रति दृढ़ अनुरक्ति ने मीरा के व्यक्तित्व को अद्‌भुत आत्मविकास दिया है। वे स्वाधीन और गरिमामयी हैं। उनके जीवन के बड़े आध्यात्मिक उद्देश्य उन्हें संकीर्ण सामंती समाज की क्षुद्रताओं के प्रति विद्रोही और विरक्त बनाते हैं। मीरा की इस शक्ति से आहत पुरुष सत्तात्मक समाज हजारगुनी क्रूरता और कपट के साथ उनपर टूट पड़ता है, किन्तु मीरा विचलित नहीं होतीं। इस प्रकार मीरा की आत्माभिव्यक्ति में एक ओर यदि कृष्ण भक्ति का अमृत है तो दूसरी ओर इस अमृत के सहज प्रकाश में बाधक रूढ़िवादी समाज के निर्मम अत्याचारों के विषय से अनवरत संघर्ष भी है। संभवत: इसीलिए मीरा ने कृष्ण के लोकरक्षक, लोकरंजक स्वरूप में अपने जीवन के समस्त अभावों की पूर्ति देखी है। कृष्ण प्रेम उन्हें जीवन के विषम और पीड़ादायी स्थिति से सहज ही मुक्त करता है। मीरा का यह प्रेम मानवीय, प्रगाढ़ और प्रत्यक्ष है। इसमें अतिशय तीव्रता है किन्तु यह उच्छृंखल नहीं है। कृष्ण की अद्‌भुत सम्मोहक छवि उन्हें प्रेम विवश कर देती है। उनका सम्पूर्ण अस्तित्व तीव्र उत्कंठित प्रेम की मार्मिक गुहार में रूपांतरित हो जाता है। मीरा का काव्य उनकी भक्ति की सहज अभिव्यक्ति है। मीरा में काव्य की कलात्मक निपुणता के लिए आग्रह या प्रयत्न नहीं है।

उनकी काव्यभाषा गहरी अर्थसम्पन्नता की शक्ति से अलंकार आदि का स्वाभाविक विधान करती है। उनके गीतों में गीतकाव्य परंपरा के उत्कृष्टतम के साथ-साथ लोकगीतों का मार्मिक अनुभव लोक खुलता दिखाई देता है। मीरा के पद गेय हैं। उनकी तीव्र भावनात्मकता उन्हें प्रगीत का महत्वपूर्ण शिल्प प्रदान करती है। मीरा के पदों में नाना शास्त्रीय रागों के प्रति अद्‌भुत अनुकूलता पायी गयी है। मीरा के काव्य में कला भावाभिव्यक्ति के अधिक आंतरिक और कारगर मूल्य के रूप में है। इन्हीं पक्षों का अध्ययन हम इस इकाई में करने जा रहे हैं।

12.2 मीरा की कविता का विषय

मीरा की कविता का विषय उनकी आत्मानुभूतियाँ और जीवनानुभव है। उनका आत्म उनके आराध्य 'गिरधर नागर' के विविध अनुभवों से विकसित और समृद्ध हैं। प्रेम ही उनके जीवन और भक्ति का सर्वोत्तम सार है। इस प्रेम की प्रेरणा मीरा स्वयं हैं। अपनी बाल्यावस्था में ही वे श्रीकृष्ण की कल्याणकारी मनोहर छवि की ओर आकृष्ट हुईं तथा यह रूपासक्ति उत्तरोत्तर दृढ़ और प्रगाढ़ प्रेम में रूपान्तरित होती गयी। मीरा की आत्माभिव्यक्ति की पुरुषासत्तात्मक तंत्र ने उनको मनमानेपन के रूप में प्रचारित किया। हमने देखा है कि मीरा किस प्रकार एक सामान्य स्त्री से भिन्न थीं। यही नहीं वे भक्ति आंदोलन के अन्य भक्तों से भी विशिष्ट थीं। कबीर या तुलसी जैसे संतों के लिए संसार के नाना प्रलोभन एक बड़ा संकट थे। स्वंय निर्बल पड़ने पर वे अपने प्रभु से आत्मबल और कृपा प्रदान करने की याचना करते थे। मीरा इस संसार या इसके संबंध और भोग-विलास आदि के प्रचण्ड आकर्षण से कभी विचलित नहीं हुईं, जबकि वे इनके बीचोबीच बैठी हुई थीं। वे इनसे सहज ही मुक्त या विरक्त थीं। गिरधर नागर से कृपा प्रार्थना वे भी करती हैं, परन्तु इसलिए कि इसी में उनकी आत्मा रमती है। वे कहती हैं:

म्हाँरी आसा चितवणि थारी, और णा दूजा दौर

उनका एकमात्र संकट कृष्ण से विछोह है। 'गिरधर नागर' के बिना उन्हें सब जग सूना लगता है। हरिविमुख संसार को वे 'दुर्जन या कूड़ा' कहकर धिक्कारती हैं। महल, अटारी, गहने, कपड़े से बांधकर रखना चाहने वाला राणा उनके लिए वृक्षों में करील के वृक्ष के समान बैरी और अप्रिय है। वे साफ कहती हैं कि -

'सीसोद्यो रूठ्यो म्हाँरो कोई करलेसी।
म्हे तो गुण गोविंद का गास्याँ, हो माई ।।टेक।।
राणो रूठ्याँ बाँरो देस रखासी।
हरि रूठ्याँ 'कुम्ह लास्या' हों, माई।

इस प्रकार गोविन्द का गुणगान ही मीरा की कविता का विषय है। गोविंद की शक्ति से मीरा निर्भय और विवेकवान होती हैं। मध्ययुगीन पुरुष सत्तात्मक समाज को मीरा की यह स्वाधीनता और साहस सह्य नहीं है। वह उन पर विपत्ति की तरह टूट पड़ता है। मीरा के आत्मनिवेदन में इन अमानवीय अनुभवों के अध्याय भी खुले हैं, किन्तु मीरा के गिरधर नागर ने उनके जीवन के समस्त विष को अमृत कर दिया है।

मीरा ने गिरधर नागर के रूप में साक्षात पूर्णता को वरण किया है। वे कहती भी हैं कि -

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो है पूरो।

ऐसा वर पाने को कभी वे पूर्वजन्म का भाग्य कहती हैं तो कभी इसे 'प्रीत पुराणी' के परिणाम के रूप में देखती हैं। इसमें उन्हें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे प्रियतम का प्रेम बड़े भाग्य से मिलता है। मीरा ने इस प्रेम को पाने के करोड़ों यत्न किये हैं। इन प्रयत्नों की पराकाष्ठा 'प्राणों को अंकोर कर दे देने' के

रूप में दिखाई पड़ती है। यह चरम समर्पण का वह रूप है जिसके लिए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दलित द्राक्षा की तरह स्वंय को निचोड़कर दे देने का रूपक दिया है। मीरा ने भी अपना सब कुछ मनमोहन पर वार दिया है। प्रेम और कलह के संसारी रूपों मात्र से परिचित समाज उनके इस अनूठे भाव को समझ नहीं पाता। वह उन्हें बिगड़ी हुई कहता है। मीरा को भी इस हरि विमुख लोक की कोई परवाह नहीं है। उनका एकमात्र अभीष्ट हरि से मिलन है। वे प्रत्येक क्षण इस मिलन की आशा और प्रतीक्षा से उत्कंठित हैं। अलौकिक प्रभु से लौकिक जगत में मिलन संभव नहीं। फलत: वे अपने रोम-रोम से साकार प्रतीज्ञा बन जाती हैं। वे एक ऐसी विरहिणी हैं जो प्रियतम के बिना क्षण भर भी जीना नहीं चाहतीं। उनका कुटुंब उनके हरि से मिलन का विरोधी है। वह उन्हें बंधन में रखने के अनेक उपाय करता है। कहीं-कहीं मीरा ने भी खण्डिता नायिका की तरह 'जोगिया' के अन्यत्र रम जाने पर उसे उलाहना दिया है। वे उस रसिक के कठोर हृदय की खबर लेती हैं। मीरा के लिए यह प्रीति दुखदाई तो हुई है, किन्तु यही उनका परम आकांक्षित है। वे जानती हैं कि इस दु:ख का उपचार भी गिरधर नागर के पास ही है। मीरा ने श्रीकृष्ण के लोक रक्षक लीलास्वरूप का भी चित्रण किया है। यहां वे प्रभु की भक्त वत्सलता के प्रसंगों का स्मरण करती हुई विनय के शांत परम भाव में भी अवस्थित दिखाई देती हैं। मीरा की आत्माभिव्यक्ति में उनके कृष्ण के प्रति अनुरक्तिपूर्ण विविध अनुभवों की ही प्रधानता है। उनका भक्त व्यक्तित्व अन्य भक्त कवियों के समान ज्ञान से नहीं अपितु प्रेम से रूपांतरित होता है। सतसंग आदि को उन्होंने अपने प्रिय से अतिशय और अनवरत निकटता के लिए चुना है। इस प्रकार वे अपने कृष्ण भक्त मन और प्राणों के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करती हैं और यह अब तक स्पष्ट हो चुका है कि इसके लिए उन्होंने कितना कठिन संघर्ष किया है। मीरा साधु समाज में रमती हैं। हरि स्मरण और हरिभजन के द्वारा उनका चित्त निरंतर उज्जवल होता है। वे अपने शीलव्रत में दृढ़ होती हैं। वे वही शृंगार करती हैं जो प्रिय को भाता है। इस प्रकार मीरा के सारे प्रयत्न अपने प्रियतम कृष्ण के मनोनुकूल बन उनमें समर्पित होने के लिए हैं। कहीं-कहीं वे काम, क्रोध, मद, मोह आदि में लिप्त आत्माओं को प्रभु के प्रति प्रेरित होने के लिए उपदेश भी देती हैं, किन्तु वह उनका प्रधान भाव नहीं है। मीरा की कविता उपदेश नहीं अपितु अनुभव प्रधान है। इसीलिए वे अन्य सगुण-निर्गुण कवियों से विशिष्ट हैं। मीरा की भक्ति और इस भक्ति के लिए उनका कठिन संघर्ष दोनों ही असाधारण है। मीरा का हरि विमुख अमानवीय संसार से संघर्ष एक सच्चाई है। कहना न होगा कि यह मात्र अपने भीतर के आलस्य, लोभ, प्रमाद या कामनाओं से संघर्ष जैसा आसान नहीं है। यह रूढ़िवादी सामंती समाज के प्रत्यक्ष अवरोधों से सीधी और बहुत कठिन लड़ाई है। ये शक्तियां बहुत संगठित और समृद्ध हैं। मीरा का काव्यलोक इन सामंती स्त्री विरोधी शक्तियों के अन्तर्विरोधों को भी उजागर करता है। मीरा ने इस समाज की वास्तविकता में अन्तर्निहित विडंबनाओं को भी रेखांकित किया है।

साधुसमाज में आत्माभिव्यक्ति के द्वारा ये सच्चाइयां सहज ही प्रकाशित हो जाती है। इसीलिए 'सतसंग' उनके लिए मात्र प्रभु से अनवरत निकटता का ही उद्यम नहीं है, अपितु इस समाज में मीरा स्त्री के प्रति असहिष्णु समाज के प्रत्येक अत्याचार को खोल कर कहती हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी उनकी वैयक्तिक मुक्तिमात्र का साधन नहीं है। मीरा ने समूचे स्त्री समाज को पराधीन और व्यक्तित्वहीन बनाकर रखने वाले सामंती विधि निषेधों के लिए इस 'गिरधर नागर' के द्वारा भारी चुनौती दी है। भक्ति आंदोलन का मुख्य सार वर्णव्यवस्था विरोध के रूप में पहचाना जाता है। इसके द्वारा ऐसे कल्याणकारी ईश्वर का विधान संभव हुआ जिसने मनुष्य को वर्ण, जाति या संप्रदाय से ऊपर उठाकर उसे मानवमात्र की आत्मगरिमा में प्रतिष्ठित किया। मीरा के गिरधर नागर के द्वारा इस आंदोलन में स्त्री मुक्ति का पक्ष भी जुड़ा। यह अनायास नहीं है कि मीरा ने भक्त वत्सल प्रभु की करुणा को रेखांकित करने के लिए जिन प्रसंगों को चुना है वे प्राय: करमाबाई, अहल्या, गणिका, द्रौपदी आदि की मुक्ति से संबंधित है। उनके प्रभु जग का उद्धार करने वाले हैं और उनकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष, या ऊंची-नीची जाति में कोई भेद नहीं है। मध्यकालीन जड़ जाति व्यवस्था में जकड़े समाज में इस प्रकार के प्रसंगों का उल्लेख कितना कठिन और क्रांतिकारी रहा होगा, इसे सहज ही समझा जा सकता है। सामंती समाज के विषम अनुभव कबीर या तुलसी जैसे कवि के लिए भी कठिन हैं, किन्तु पुरुष होने के नाते पराधीनता उनका अनुभव नहीं है। मीरा ने 'पराधीनता' की अमानवीय यातनाओं को झेला है और व्यक्त किया है। प्रभु के प्रति समर्पित होती हुई मीरा अपनी आत्माभिव्यक्ति के द्वारा वस्तुत: अपने 'आत्म' का संधान भी करती है। यही कारण है कि उनकी कविता का विषय मात्र भक्ति भाव का

निवेदन न होकर एक स्वाधीन स्त्री की आत्माभिव्यक्ति पर पहरे बैठाने वाले समाज के अनुभवों की भी अभिव्यक्ति है। संभवत: इसीलिए मीरा के यहां गोपन कुछ भी नहीं है; न तो उनका कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम जो अपनी अलौकिकता के बावजूद विकृत सामंती प्रवृत्तियों द्वारा लांछित किया जाता है और न इन प्रवृत्तियों के अधीन काम करने वाले समाज के अत्याचार। मीरा की यह समाज सजगता असाधारण है। उनकी भक्ति और उनका आत्मसंघर्ष दोनों की गति एक साधु और मानवीय समाज की रचना के प्रति है।

इस प्रकार मीरा का काव्य कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति और इस अनुरक्ति के प्रति प्रतिकूल समाज के अनुभवों की अभिव्यक्ति है। वे अपने राग या भक्ति मात्र के प्रति एकाग्र समाज निरपेक्ष भक्त नहीं है। मध्ययुगीन समाज की वे प्रवृत्तियां, जो विशेष रूप से स्त्री के दमन के प्रति उत्तरदायी हैं, मीरा के काव्य में प्रश्नांकित हुई हैं। मीरा ने अभिव्यक्ति के लिए प्रगीत मुक्तकों का कलेवर चुना है। उनके पद उनके अनुभव के नाना हिस्सों से संबद्ध हैं और इनके भीतर एक महाकाव्यात्मक अन्तर्संबद्धता प्रवाहित है। मीरा की कविता के विषय पर विचार करते हुए हमें उनके पदों के व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की पहचान करनी चाहिए। मीरा के पदों से उनका स्वयं का जो व्यक्तित्व उभरता है वह गरिमामय, साधु और साहसी है। कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम से उसे अमृत और गरल को अलग करके देखने की द्वन्द्वात्मक दृष्टि दी है। उनके द्वारा निर्मित श्रीकृष्ण की छवि में भी उनके अपने भाव-अभाव के विविध संदर्भ प्रतिबिंबित हुए हैं। कुल मिलाकर यह कृष्ण छवि अपने सौन्दर्य से ज्यादा अपनी सर्वजन उपकारक क्षमता के कारण मीरा के हृदय में बसती है। अपने आत्मनिवेदनों में मीरा अपने अभावों और दु:खों की गठरी खोलती अवश्य है किन्तु कहीं भी दुख से दबी हुई कातर या विगलित नहीं दिखाई देतीं। उनका आत्मबोध प्रखर और पूर्ण है। कहना न होगा कि कृष्ण उनकी पूर्णता के नियामक हैं।

12.3 मीरा की कविता में प्रेमानुभूति और प्रेम विह्वलता का चित्रण

मध्ययुगीन भक्तिकाव्य धारा में मीरा की पहचान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अद्‌भुत अनन्य प्रेम भावना के द्वारा बनती है। यह अनुरक्ति अपने चरम रूप में घटित होती हुई उनके व्यक्तित्व का पर्याय बन जाती है। प्रेम स्वाभाविक रूप से एक व्यापक और उदात्त भाव है। इसकी प्रेरणा से मानवमन की समस्त ग्रंथियां खुल जाती हैं तथा वह अनवरत आत्मप्रसार को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में यदि यह प्रेम 'गिरधर नागर' जैसा साक्षात पूर्णता के प्रति निवेदित हो तो इसकी शक्ति का कहना ही क्या? मीरा का 'गिरधर नागर' के प्रति प्रेम उनकी जीवनानुभूति से अभिन्न है। इसमें घुल-मिल कर मीरा ने अपना समस्त व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभव बांटा है या जिया है। वे इसे अपने जीवनानुभवों की शक्ति से विकसित करते हुए अत्यन्त अकृत्रिम और मानवीय धरातल प्रदान करती हैं। मीरा अपने प्रभु को अपनी लौकिक वेदनाओं और अपेक्षाओं के अनुरूप रचती हैं। इसलिए उनकी छवि यहां अन्य कृष्णभक्त कवियों द्वारा निर्मित छवि से विशिष्ट हो जाती है। निस्संदेह मीरा का प्रेम अलौकिक सर्वव्यापक प्रभु के प्रति है किन्तु यह एक कुलीन परिवार की स्त्री द्वारा कुल और समाज के विधि निषेधों के तिरस्कार के साथ घटित होता है। प्रेम तो प्रत्येक युग की स्त्री के लिए वर्जित फल है। मीरा ने इस वर्जित फल की मादकता के अनुभव का कोई वर्णन छोड़ा नहीं है। वे अपने प्रभु को अलौकिकता के रहस्य में छुपाकर स्त्री के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित पथ का चुनाव नहीं करतीं। वे अपने अलौकिक आराध्य में भी प्रणय के ऐसे उन्मुक्त और ऐन्द्रिक रंग भर देती हैं कि दोहरी नैतिकताओं वाला मध्ययुगीन सामंती समाज किंकर्तव्यविमूढ़ रह जाता है।

यही कारण है कि मीरा के इस आचरण को पूरे समाज के लिए भारी संकट मानते हुए वह मीरा के प्रति अपने व्यवहार की ऊपरी मानवीय खोल उतार कर सर्वथा निरंकुश और निर्भय हो उठता है। मध्ययुग में राजस्थान के सामंती समाज ने अपनी मिथ्याकुलमर्यादा के लिए स्त्रियों पर क्या-क्या कहर ढाए हैं, यह किसी से छुपा नहीं है, किन्तु मीरा के प्रेम के साहस और शक्ति के सम्मुख यह समाज अपने विधि-निषेध, शास्त्र, पुराण, लोकमर्यादा जैसे सारे स्त्री विरोधी अस्त्रों से सज्जित होने के बावजूद निहत्था साबित होता है। मीरा के प्रेम ने लोक में अपनी पवित्रता के प्रति विश्वास की अलख जगायी थी। राणा कुल और नारी निंदक समाज की सारी तैयारियां मीरा की इस व्यापक लोक स्वीकृति के

सम्मुख निष्फल हुई। मीरा में कहीं कोई दुविधा या आडंबर नहीं था; न प्रेम को लेकर न ही रूढ़िवादी समाज के विरोध को लेकर और न ही इस प्रेम की सर्वथा छद्म रहित अभिव्यक्ति को लेकर।

मीरा का अन्तर्जगत सहज और निर्मल है। यह सचमुच आश्चर्यजनक है कि उनमें स्त्रियों के लिए अति स्वाभाविक दुर्बलताएं या जटिलताएं नहीं है। संभवत: बाल्यकाल में ही उन्होंने जिस गिरधर छवि को अंतर में बसा लिया है उसने ऐसे रूग्ण, असुरक्षाबोध प्रेरित भावों के लिए वहां कोई स्थान ही नहीं छोड़ा है। आयु और जीवन संघर्ष के साथ विकसित और प्रगाढ़ होते हुए इस प्रेम ने मीरा को अद्‌भुत आत्मविश्वास प्रदान किया। इसकी ही शक्ति से मीरा ने स्त्री की अग्नि परीक्षाओं के अभ्यस्त समाज को कितनी ही बार निरुत्तर कर दिया। पूर्व उल्लेखों में हमने देखा है कि मीरा के लिए केवल संकीर्ण चित्त सामंती समाज संकट नहीं था, साधुवेशधारी असाधुओं से भी उनका संघर्ष हुआ। अपनी निर्भीकता और निर्मलता के द्वारा उन्होंने सहज ही ऐसे दुष्टों के समूचे कपट को खोल कर रख दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्य स्त्रियों की तरह मीरा के भावलोक का कुछ भी गोपन या अबूझ नहीं है। वे अपने जीवन के प्रत्येक सत्य के साथ गिरधर नागर के प्रति निवेदित हैं।

मीरा का रागजगत निर्कुण्ठ और स्वाभाविक होने के कारण ऊर्वर और गतिशील है। यह उन्हें शेष जगत के सत्य, शील और सौन्दर्य से जोड़ता है। उनके चित्त में इस प्रेम का एकछत्र राज्य है। पुन: कहना होगा कि वहां इस प्रेम का किसी प्रतिकूल भाव या प्रलोभन से कोई संघर्ष नहीं दिखाई देता। इसे इस तरह देखना चाहिए कि मीरा ने सायास इस प्रेम के प्रति अपने मन को पक्का नहीं किया है, बल्कि इस प्रेम ने अपनी गहराई और प्रसार के द्वारा मीरा को उनके आराध्य के प्रति एकनिष्ठ सहज प्रेम का पर्याय बना दिया है। श्रीकृष्ण को मीरा ने अपना 'सुहाग' माना है। अपने सुहाग के समान ही वे स्वंय भी शील, संयम, समर्पण और पातिव्रत्य में अनूठी हैं। अन्य सामान्य सुहागिनों की तरह वे अपने पति के प्रेम को वैयक्तिक अनुभव मानती हुई उसके प्रति संकीर्ण या संरक्षणशील नहीं हैं। उन्हें अपने प्रिय की जग के आर्तजनों के उद्धार के प्रति तत्परता सर्वाधिक प्रिय है। उनका प्रेमपथ सुविस्तृत राजपथ की तरह उदार है।

यद्यपि कुछ पदों में उन्होंने प्रेम की गैल के संकरे होने की बात कही है। वस्तुत: उन्होंने इस संकरेपन को अनेक प्रकार के विघ्नों और अवरोधों से युक्त होने के अर्थ में लिया है। वे इस पथ की विकटता भी चिन्हित करती है और बताती है कि इसपर अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर ही चला जा सकता है।

मीरा के कृष्ण 'चढ़ती हुई वय' के तिरछे सम्मोहक नेत्रों वाले अभिराम कृष्ण हैं। वे सुन्दर और रसिक हैं। उनके हाव-भाव सम्मोहक हैं। उनकी बंकिम छवि मीरा के हृदय में ऐसी अड़ी है कि उसका निकालना संभव नहीं है। इसे मीरा ने प्रेम की तीर का कलेजे में धंस कर वहीं धंसा रह जाना भी कहा है। कहीं-कहीं यह कलेजे को आर-पार भी कर गया है। यह एक ऐसा बंधन है जिसमें चंचल मन को भी बांध रखने की शक्ति है। मीरा के प्रेम की एकनिष्ठता के मूल में इसकी यही शक्ति है। मीरा ने इस प्रेम को नित्य नवीन और गहरा होता अनुभव किया है। वे सांवरे के रंग में रंगती जाती हैं। वे स्पष्ट कहती हैं कि तन-मन जाता है तो जाये, सीस ही क्यों न कट जाये, लोक की सर्वथा विमुखता भी स्वीकार हैं किन्तु गिरधर नागर से दूर रहना किसी प्रकार सहय नहीं है। प्रेमजन्य मनोदशाओं का चित्रण करती हुई मीरा इस प्रेम के द्वारा मन व शरीर के अवश हो जाने की बात कहती हैं। उनकी यह अवश दशा स्त्री स्वातंत्र्य के विरोधी कुल और समाज को स्वीकार नहीं किन्तु प्रगाढ़ प्रेम में बेसुध मीरा को एकमात्र प्रिय के प्रति अपने प्रेम के निवेदन का ध्यान है। प्रिय की मोहक छवि को नेत्रों में बसाती हुई, उसकी चेष्टाओं को एकटक निहारती हुई, उसकी मीठी वाणी को रोम-रोम से सुनती हुई, मीरा कृष्णमय हो जाती हैं। वे गोपाल के संग-संग डोलना चाहती हैं। उनके निरंतर सान्निध्य के लिए वे धेनुचारी गोपों का वेश तक धारण करने की इच्छा करती हैं। प्रिय के संग की कामना ने उन्हें 'गुलफाम' बना दिया है। वे कृष्ण दरस का सौभाग्य पाने वाले वृन्दावन का तृण, कण तक हो जाना चाहती हैं। प्रेम के इस चरम अनुभव को व्यक्त करती हुई मीरा ने एक पद में संतों द्वारा निर्दिष्ट भक्ति के पथ की सीमाओं की ओर भी साभिप्राय संकेत किया है। उल्लेखनीय है कि चैतन्य महाप्रभु की

मधुरा भक्ति में स्त्री भक्तों का प्रवेश वर्जित था। इस धारणा से जुड़ी हुई एक घटना मीरा के जीवन में भी घटी। संभवत: ऐसी ही धारणाओं की ओर संकेत करते हुए मीरा ने कहा कि -

'गुरुजन कठिन कानि कासों री कहिए।
मीरा प्रभु गिरधर मिलि ऐसे ही रहिए।।

स्पष्ट है कि उन्हें गिरधर से मिलन की सहज रीति प्रिय है। मीरा कृष्ण के प्रति अपनी प्रीति के प्रत्युत्तर में उनसे और सघन प्रीति चाहती है। मीरा कहती हैं -

रमइया मेरे तोही सूं लायी नेह।
लगी प्रीति जिन तोडै रे बाला, अधिक कीजै नेह ।।टेक।।

मीरा कहती हैं कि प्रेम करने वाला तो बावला है किन्तु प्रेम को तोड़ने वाला क्रूर है। मीरा के प्रिय का मीरा से अबोला नहीं है। वह इन्हें तिरछे निहारता है, हंस कर देखता है और मीठी बाणी बोलता है। उसने आने का वचन भी दिया है, किन्तु आया नहीं है। मीरा उससे अभिसारिका की तरह मिलने जाती हैं। दिन-रात उसके साथ खेलती हैं। मीरा के सर्वस्व पर उनके प्रिय का अधिकार है। 'बेचे तो बिक जाऊं' की प्रेम पराकाष्ठा यहां है। कहीं-कहीं मीरा ने अपने अनमोल की कीमत पर गोविंद को मोल लेने की बात कही है। अपने प्रिय के चरित्र में दिव्यता का समावेश करती हुई मीरा ने उसके प्रतिक्षण मन में बसने का भाव व्यक्त किया है। ऐसे अविनाशी प्रियतम के साथ वे 'पंचरंग चोला' पहन कर 'झिरमिट' खेलने जाती हैं। यह प्रिय उनका अमर सौभाग्य है। वे वैष्णव साधुओं जैसा तिलक, माला और शीलव्रत का शृंगार धारण करती हैं। कृष्ण के प्रति मीरा की प्रेमोन्मत्तता के प्रति नासमझ जड़ समाज उन्हें 'मदन बावरी' कहता है, किन्तु मीरा को इसकी कोई परवाह नहीं है। सीस कटा कर भी प्रेमपथ पर अडिग रहने का भाव मीरा ने यों ही नहीं व्यक्त किया है। कृष्ण के प्रति प्रेम की उन्हें बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है किन्तु इन सभी चुनौतियों से गुजरता हुआ उनका प्रेम और सघन तथा दिव्य हुआ है। राणा के दिये हुए विष ने न केवल इस प्रेम को और चमका दिया है, अपितु मीरा को अधिक निर्भीक भी कर दिया है। मीरा अपने देशकाल की स्वयं के प्रति संकीर्णता से क्षुब्ध तो है, किन्तु उनकी पीड़ा प्रियतम कृष्ण की निष्ठुरता है। प्रेम के प्रतिदान से वंचित मीरा प्रिय को अनेक प्रकार से उलाहना देती है। वे उसके सहज परहितकारी आचरण की याद दिलाती हैं। कभी-कभी उन्हें लगता है कि उन्हें प्रेमाभक्ति के विधि-विधानों का ज्ञान नहीं है अथवा प्रेम प्रदर्शन की कला में वे कच्ची रह गयी हैं। ऐसे प्रसंगों में वे उस योगी प्रियतम से प्रेम मार्ग बता जाने की विनती करती हैं तो कभी वे प्रेम के समस्त रहस्यों और नियमों के श्रेष्ठ ज्ञानी की तरह गहरे और उथले प्रेम का अंतर बताती हैं और कहती हैं कि अनेक प्रकार की विदीर्ण कर देने वाली बाधाएं ही प्रेम की परीक्षा है और ओछा प्रेम तो ऊंचाई से बहने वाले जल स्रोत की तरह है जो शीघ्र बहकर नष्ट हो जाता है। प्रेम के लिए मीरा ने जल तथा मछली, दीपक और पतंगा आदि का रूपक लिया है। यहां वे जल के लिए मीन की तथा दीप के लिए पतंग की एकनिष्ठता को प्रेमी के लिए आदर्श मानती हैं। कहीं-कहीं मीरा ने प्रिय की निष्ठुरता की अभिव्यक्ति के लिए उसे जल या दीपक-सा अपने प्रेमीजन की कामना और पीड़ा के प्रति बेपरवाह कहा है। इस प्रकार मीरा के राग जगत में सबसे तीव्र स्वर विरह का ही है। उनकी प्रेम विह्वलता के मूल में प्रिय-वियोग की पीड़ाएं भी हैं। प्रियतम का सौन्दर्य उन्हें बांधता है तो प्रिय से संयोग न होने की वेदना उन्हें विदीर्ण कर देती है। इस विवाद में उनके लौकिक जीवन के अभावों का स्वर भी शामिल है। वस्तुत: यह स्वर उनके प्रेम की एकनिष्ठता के साथ-साथ उनकी वेदना की प्रगाढ़ता का भी अन्त: स्वर है। इस प्रेम के प्रति अपने मन व काया की मति-गति के सर्वाधिक समर्थ उद्घाटक के रूप में मीरा ने अपने नेत्रों को चुना है। ये नेत्र उनकी प्रेमतन्मयता के अद्भुत व्यंजक हैं। अपने रोम-रोम से प्रिय की प्रतीक्षा बनी मीरा स्वयं को प्राय: घर की देहरी या द्वार पर खड़ा चित्रित करती हैं। मीरा ने नेत्रों का बड़ा सजीव व संवेदनशील वर्णन किया है। प्रियतम के बंकिम दीर्घ नेत्र ही उन पर सबसे गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। उनके अपने नेत्र भी उनसे कहीं ज्यादा सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि वास्तविकता हो या स्वप्न, प्रिय की रूपमाधुरी का संपर्क उनसे तो होना ही है। इन नेत्रों में मीरा ने कभी प्रभु का स्वरूप बसाया है तो कभी प्रतीक्षातुरता का। इस प्रकार इनके पास प्रतिक्षण प्रिय का अतिप्रिय काम है। मीरा के मन और काया की समस्त उन्मुक्तता इन नेत्रों में डोलती है। प्रिय की छवि के प्रति आतुर

और समर्पित ये नेत्र पलकों को भी अचंचल कर लेने में माहिर हैं। इस प्रकार मीरा की प्रेमपरक मनोदशाओं में सबसे मार्मिक चित्रण इन नेत्रों का हुआ है। इनके बोलने-डोलने को पूरी तरह से प्रिय के अधीन बताती हुई मीरा वस्तुत: अपनी गहरी प्रेमासक्ति व्यक्त करती हैं। नेत्रों ने मीरा के प्रेम को एक सुदंर आरंभ ही नहीं दिया है, अपितु इसके चरम स्वरूप के विधायक भी ये नेत्र ही हैं। आनंदातिरेक के परम भाव या प्रिय विरह की विदीर्णकारी स्थिति में जल से परिपूर्ण होकर ये नेत्र ही मुखर होते हैं। मीरा ने स्पष्ट कहा है कि उनके नयनों को प्रिय छवि की बान (आदत) पड़ गयी है। इस प्रकार मीरा के नेत्र उनके व्यक्तित्व से भी ज्यादा स्वाधीन है। वे वही करते हैं जो उन्हें प्रिय है। मीरा ने नेत्रों को अपने नेह और व्याकुलता की अभिव्यक्ति के सर्वाधिक समर्थ माध्यम के रूप में चित्रित किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गिरधर नागर के प्रति मीरा की भावनाएं व अनुभूतियां तीव्रतम और सक्रिय हैं। उनका आत्मनिवेदन, अपने प्रेम के विश्वास से पुष्ट प्रिय पर उनका अधिकार भाव, प्रियतम की निष्ठुरता के प्रति उपालंभ या प्रिय के प्रति उनका आकर्षण, समर्पण आदि भाव, भावों के तीव्र संवेगों से युक्त हैं। मीरा की प्रेम सघन भाव दशा में गूढ़-गोपन आशयों की छायाएं नहीं हैं। उनके व्यक्तित्व की निर्भीकता ने उन्हें सहज और स्पष्ट आत्मप्रकाशन का कौशल दिया है। उनके पदों के संक्षिप्त क्लेवर में यह सहजता भावों की अगाध गहराई में प्रेमोन्मत्तता का तीव्रतम आंदोलन रचती है तथा इस आंदोलन में जग के समस्त क्षुद्र और कुबुद्धिपूर्ण को ठेल कर अलग कर देने की क्षमता है। प्रेम को मीरा ने न केवल स्वयं के अपितु मनुष्य मात्र के परम साध्य और जीवन सार के रूप में पहचाना है। मीरा की प्रेम-विह्वलता की प्रेरक श्रीकृष्ण से चरम एकात्म की वे भावनायें हैं जिनमें आत्मसमर्पण के औदार्य व निष्ठा के साथ-साथ प्रिय से प्रेम के प्रतिदान की सहज मानवीय अपेक्षायें भी हैं। कुछेक पदों में मीरा ने भी 'प्रेम' को ज्ञान से अधिक 'काम्य' और सार्थक कहा है। मीरा ने प्रेम को जीवन को मानवीय, उदात्त और समर्पणशील बनाने वाली शक्ति के रूप में चित्रित किया है। कहना न होगा कि कृष्ण जैसे प्रियतम के सतत् नैकट्य के लिए यह प्रेम साधन भी है और साध्य भी।

12.4 मीरा की भाषा

मीरा मूलत: भक्त है। उनका काव्य उनकी भक्ति भावना का सहज प्रकाशन है। यह अभिव्यक्ति उनके व्यक्तित्व की सहजता और मानवीयता से अभिन्न है। भक्ति ने उन्हें उदात्त, निर्कुण्ठ और निर्वैयक्तिक बनाया है। मीरा की काव्य भाषा का स्रोत उनके अपने जीवनानुभव हैं। मीरा ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक अनुकूल और उन्मुक्त वातावरण निर्मित करने का संघर्ष किया। साधु समाज में उठैना-बैठना, भजन-कीर्तन आदि उनका एक ऐसा ही प्रयत्न था। इस समाज में प्रभु की बंदगी चाहने वाले प्रत्येक भक्त का स्वागत था। मीरा के भाव-जगत, भाषा और शिल्प को इन संतों की अभिव्यक्ति विधि ने अवश्य प्रभावित किया होगा। इसके अतिरिक्त, लोक -जीवन से मीरा की गहरी निकटता थी। उनकी अकृत्रिम, आडंबर से पूरी तरह से मुक्त किन्तु अभिव्यक्ति सक्षम तथा कला को जीवनी शक्ति से संयुक्त कर रूप लेने वाली भाषा का स्रोत यह लोक-जीवन ही है। राग-विराग को कहने-सुनने के लोक प्रचलित रूपों का मीरा ने बहुत सुन्दर उपयोग किया है। उनकी भाषा सादी, सहज और मार्मिक है। उसमें जीवन के सहज रागात्मक मानवीय स्रोत खुलते हैं। गतिशील और मानवीय आशय का विकसित स्वरूप उनकी भाषा की स्वाभाविक प्राणवत्ता का विधान करता है। वस्तुत: मीरा ही नहीं, अपितु समूची भक्ति परंपरा का काव्य अपने अर्थ की गहरी शक्ति पर निर्भर है। भक्त कवियों का भाव - जगत भावों और अनुभवों से संपन्न है। जीवन से सहज रागात्मक जुड़ाव के चलते उनकी यह अनुभव समृद्धि बढ़ती जाती है और भाषा की क्षमता में भी निखार आता है। समाज में निर्कुण्ठ मिलने-जुलने से उसमें एक अनूठी सार्वदेशिकता रूप लेती है। इस दृष्टि से कबीर आदि संत कवियों के समान ही मीरा की भाषा भी अपनी जनोन्मुखता के कारण निखरती चली गयी है। उसमें अर्थ को वैविध्य में रचने की अद्भुत क्षमता आयी है। मीरा के व्यक्तित्व में कहीं कोई छद्म नहीं है। उनका प्रत्येक अनुभव व्यक्त होने के लिए है। इसके अन्तर्गत कोई भी भाव किसी भी कारण से मीरा के लिए दुविधा नहीं है। मीरा की काव्य रचना की पूरी प्रक्रिया में उनका कोई सत्य संसार से ओझल रखने के लिए नहीं है। इसलिए किसी प्रकार की रहस्यात्मकता या कविता की जटिल अन्विति मीरा का प्रयत्न

नहीं है। मीरा का सत्य गहरा, छद्म-रहित और संबोधित है। मीरा इसे जग के ज्ञान और अनुभव का हिस्सा बना देने के लिए व्यग्र हैं। कहती हैं --

माई री म्हा लियां गोविन्दा भोल ।।टेक।।
थे कह्यां छाणे म्हां काचोड्डे लिया बजन्ता ढोल।

मीरा की अभिव्यक्ति का संबंध उनके भावों से है। ये भाव अपनी आंतरिक रागात्मक अर्न्तसंबद्धता के साथ उनके संक्षिप्त कलेवर वाले पदों में एक संश्लिष्ट अन्विति लेते हैं। उनके पास कहने के लिए आत्मानुभूति के तमाम गहरे सघन रूप हैं तथा इनमें उनके आत्मसंघर्ष का सत्य भी शामिल है। इस प्रकार के आत्मनिवेदन से मीरा की एक आत्म-छवि भी उभरती है, किन्तु वे यहां क्रमिक विकास की सुविस्तारित अन्विति संपन्न कथा नहीं कह रही हैं और न ही कोई चरित्र गाथा। इसलिए उनके पदों में अनेक भावों की पुनरावृत्ति भी है। मुक्तक पदों में भावों की संक्षिप्त अन्विति की स्थिति में भाषा का काम और महत्वपूर्ण हो जाता है। भाषा का काम अनुभूति की समग्रत: अभिव्यक्ति है। अर्थ की शक्ति के द्वारा अभिव्यक्ति क्षमता सम्पन्न कवियों को भी शब्दों को अनुभूति के प्रति अपर्याप्त कहते सुना गया है। मीरा भी कहीं-कहीं अपने सघन प्रेम या प्रेम पीर के अनुभव से जग के अभिज्ञ रह जाने की बात कहती हैं, किन्तु यहां वे भाषा के असामर्थ्य से अधिक अपने गहरे भावों के प्रति जग की अभिज्ञता ही चिन्हित करना चाहती हैं। गिरधर विमुख जग में उनके सत्य से साक्षात्कार की क्षमता कहां?

मीरा की भाषा मुख्यत: राजस्थानी है। कुछ पदों में ब्रज और गुजराती भाषा का प्रयोग भी दिखाई देता है। मीरा की भाषा में पंजाब, मध्यप्रदेश और पूर्वी प्रदेशों की प्रचलित भाषा के कुछ शब्द भी मिल जाते हैं। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि मीरा के पद मौखिक परंपरा में सर्वाधिक प्रचलित हुए, इसलिए उनकी भाषा का अपने मूल रूप में बने रहना संभव नहीं लगता। उनके कई पदों के भिन्न-भिन्न रूप मिल जाते हैं, अर्थात् लोक उन्हें अपने अनुरूप ढाल लेता है। इसलिए मीरा की भाषा में शब्दों का जो वैविध्य दिखाई देता है या कई भाषाओं की जो झलक दिखाई देती है उसके मूल में यह कारण भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त मीरा ने अपनी भक्त मण्डली से बहुत कुछ सीखा है। कबीर आदि संत कवि भ्रमणशील थे। इसके चलते वे कई भाषाओं के संपर्क में आये तो मीरा की साधु मण्डली में भी कई प्रदेशों के संतों का आना-जाना था। मीरा उन्हें सुनती और उनसे सीखती भी रही होंगी। उनकी भाषा को इस संदर्भ में भी देखना चाहिए। मीरा राजस्थान की थीं। राजस्थानी उनकी अपनी भाषा है। राजस्थानी भाषा को मीरा ने गहरी व्यंजकता में साधा है। वे इस भाषा के लोकचित पर चढ़े मुहावरों का बड़ा सुंदर उपयोग करती हैं। इस भाषा की बिम्ब निर्माण क्षमता और अर्थ सन्दर्भता पर मीरा की सहज पकड़ है। गुजराती और ब्रज का भी मीरा ने साधिकार प्रयोग किया है। उनकी भक्ति के समान ही उनकी भाषा में भी नाथ-सिद्ध भक्तों की परंपरा के साथ-साथ सगुण भक्त कवियों का अर्जित भाव उनके अर्थ को अधिक सजीव बनाता हुआ शामिल होता है। उनके कृष्ण-प्रेम में जीवन की गहराई और वैविध्य तो है ही, साथ ही स्त्री जीवन के आघातपूर्ण अनुभव उनके संवेगों को आत्यान्तिक और तीव्र बनाते हैं। मीरा का बल उनके सहज भाव या मर्म पर है। उनके पदों की भाषा चाहे वह राजस्थानी हो या पंजाबी इस मर्म को उद्घाटित करने में समर्थ है।

मीरा की काव्य भाषा का प्रधान कार्य कृष्ण-स्वरूप व इस स्वरूप के प्रति उनके एकान्त सघन प्रेम का निवेदन है। कृष्ण छवि के निर्माण में उनकी प्रतिमा कृष्ण भक्ति परंपरा से द्वन्द्वात्मक अन्तर्संबंध के साथ दिखाई देती है। उनके द्वारा निर्मित कृष्ण छवि का सम्मोहन बहुत सघन प्रभाव छोड़ने वाला है। मीरा ने इसके तथ्यात्मक चित्रण की अपेक्षा इसके प्रभाव को ही व्यक्त किया है। वे उनके सौन्दर्य को उसकी रीझने-रिझाने की क्षमता में ही देखती हैं।-

हे मां बड़ी-बड़ी अंखियन वारो, सांवरो मोतन हेरत हंसिके ।।टेक।।
भौंह कमान बान बांके लोचन, मारत हियरे कसिके।

या-

थारो रूप देख्यां अटकी ।। टेक ।।
कुल-कुटुंब सजण सकल बार-बार हटकी।
बिसट्चांणा लगण लगा मोर मुकुट बटकी।

मीरा द्वारा निर्मित कृष्ण छवि सहज उल्लास और कर्म से दीप्त है। उनके अंग-प्रत्यंग में जीवन की अद्भुत गति और लास्य है। मीरा को भी अन्य कृष्ण भक्त कवियों के समान कृष्ण की बंकिम छवि अतिशय प्रिय है। नटवर नागर की इस वक्र-भंगिमा को मीरा ने परंपरा से लिया है, किन्तु इसका इसके आड़ेपन के कारण हृदय में धंस कर वहीं धंसा रह जाना मीरा का अपना विशिष्ट अनुभव है। इस प्रकार मीरा की भाषा उनके आराध्य के अनूठे सौन्दर्यानुभव के लिए जो बिम्ब विधान अपनाती है उसमें परंपरा में प्रचलित को भी नया बनाकर प्रस्तुत करने की क्षमता है। मदनमोहन के रूप के अनुभव को मीरा ने 'अमृत' कहा है। सूर की राधा और गोपिकाओं को भी कृष्ण का यही चपल, गतिशील और लीला पुरूषोत्तम रूप प्रिय है। वहां ये गोपिकायें सूर और कृष्ण के बीच में हैं। मीरा और कृष्ण का संबंध सीधा और प्रत्यक्ष है। इनका शिल्प भी प्राय: आत्मकथन है। भक्ति आंदोलन ने ब्रजभाषा को काव्य भाषा के रूप में स्थिर कर उसे लंबा जीवन प्रदान किया। विशेष रूप से सूर के कारण इस भाषा की शक्ति सर्वाधिक निखरी। इसी प्रकार, मीरा के कारण राजस्थानी भाषा को काव्य भाषा की मार्मिकता और नाटकीयता प्राप्त हुई। इस भाषा के सामर्थ्य का दूसरा महत्वपूर्ण रूप हम मीरा के सघन सम्पन्न मनोजगत के प्रकाशन के संदर्भ में देखते हैं। यहां इसकी सहजता देखते बनती है ---

देखा माई हरि मण काठ कियां ।। टेक ।।
आवण कह गया अजा ण आयां, कर म्हारे कोल गया।
खाणा पाणा सुध बुध सब बिसर्‌या, काई म्हारे प्राण जिया।

इस प्रकार मीरा के शब्द प्रगीत के वृत्त का निर्वाह करते हुए मुख्यार्थ के प्रति केन्द्राभिमुखता के साथ एक तराश लेते हैं। यहां वे अपने प्रचलित रूपों से किंचित भिन्न भी हो जाते हैं, किन्तु इस प्रकार ये खण्डित या विकृत न होकर अधिक काव्यात्मक और सटीक हो जाते हैं। उनके समस्त पदों में संरचना की यह संश्लिष्टता दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त मीरा की भाषा में शब्दों के बीच साहचर्य और समायोजन का संबंध दिखाई देता है। वे सामान्य से सत्य को नाटकीय वक्रता या गहरी व्यंजना प्रदान करते हैं। यह नाटकीयता उनके विरह के पदों में सर्वाधिक उभरी है। वे प्रिय मिलन की उत्सुकता, दीवानगी या तड़प की पूर्व प्रचलित अवधारणाओं का ही उपयोग करती हैं, किन्तु उनकी वाणी में सजकर ये भाव अनूठे हो जाते हैं, जैसे --

ऐसी लगन लगाइ कहां तू जासी ।। टेक ।।
तुम बिन देख्यां कल न पड़त है, तलफ तलफ जिवजासी।

यही नहीं, अपने आराध्य के लिए उन्होंने समस्त पारंपरिक संबोधन चुने हैं, किन्तु प्रत्येक पद में यह संबोधन बहुत जागृत और नवीन सा लगता है। मीरा लोक-प्रचलित भाषा को उसके समस्त मुहावरों के साथ उठा लेती हैं और उसमें अपना हृदय खोल देती हैं। यही कारण है कि मौखिक परंपरा में मीरा के पद न केवल बहुत स्वीकृत हुए हैं, अपितु इनमें रूपान्तरण का असाधारण लचीलापन भी रहा है। महत्वपूर्ण यह कि इस प्रकार निरंतर बदले जाकर भी मीरा के पद कहीं विकृत नहीं हुए। उनके पदों के नाना परिवर्तित रूपों को लेकर देखा जा सकता है कि उनके अपने अर्थ को कहीं कोई क्षति नहीं पहुंची है। वस्तुत: यह लोकभाषा की क्षमता है। यह भाषा वह 'बहता नीर' है जिसमें सबका अर्घ्य अक्षत् रूप में समाहित हो जाता है। मीरा के काव्य में 'अर्थ' मात्र संरचना नहीं है, अपितु अनुभूति की संश्लिष्ट व समग्र अभिव्यक्ति है। मीरा की आत्मानुभूति के कुछ निर्णीत बिन्दु हैं और उनका काव्य संसार इन्हीं बिन्दुओं के इर्द-गिर्द बुना जाता है। ये बिन्दु प्रियतम की सौन्दर्यानुभूति, उनके प्रति भावों के निवेदन या विरूद्ध संसार के कारण कठिन हुए प्रेमपथ के संघर्ष के अनुभव के हैं। इस प्रकार मीरा का प्रमुख अनुभव प्रेम या विरह का कोमल, आत्मीय या माधुर्यपूर्ण है। इन भावों के संदर्भ में मीरा की भाषा की छटा अद्भुत है। यह यहां स्निग्ध भाव व्यापार के अनुरूप प्रवाहमयी, गहरी और लास्यपूर्ण

है। मीरा की भाषा में प्रखर पुरुष भावों के मोड़ भी आते हैं। ये वे स्थल हैं जहां मीरा हरिविमुख लोक को बेलाग भाव से धिक्कारती हैं, कहती हैं --

दुरजन जलो ना अंगीठी

अथवा

यह संसार कुबुधि रो भांडो।

अथवा

थारे देस राणा साध नहीं छै लोग बसैं सब कूड़ो।

इत्यादि। ऐसे प्रसंगों से मीरा के व्यक्तित्व की तेजस्विता और निश्चय प्रकट होता है। मीरा ने लोक-प्रचलित उक्तियों तथा दृष्टांतों का बहुत सुन्दर साभिप्राय प्रयोग किया है। इन उक्तियों में प्रवाहित जीवनराग को कहीं से बदले बिना वे अपनी भाषा में ले आती हैं तथा अपनी अनुभूति की गहरी और व्यापक संदर्भता के साथ उसे जोड़ देती हैं। जैसे --

आंबा की डालि कोइल इक बोले, मेरो मरण अस जग केरी हांसी।

अथवा

एकै थाणे रोपिया रे, इक आंबो इक बूल
बाको रस नीकौ लगैरे, बाकी लागै सूल

आदि। वस्तुत: ये उक्तियां, मुहावरे या दृष्टांत लोक जीवन व साहित्य में अपनी बहुप्रयुक्तता के बावजूद घिसे हुए न होकर अधिक अर्थवान और दीप्त हैं। मीरा की भाषा को सहजता के निर्माण में इस प्रकार के प्रयोगों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ऐसे प्रयोगों द्वारा मीरा उन गहरे अर्थसंकेतों का निर्माण करती है जिसके द्वारा उनके निहितार्थ खुलते और गतिशील होते हैं। मीरा की भाषा के जिम्मे उनकी सूक्ष्म व गहन प्रेमानुभूतियों की अभिव्यक्ति का कठिन काम है। यह एक स्त्री का प्रेम निवेदन है तथा बहुत निर्भीक और प्रत्यक्ष है। दूसरी तरफ, मीरा के प्रति शंकालु संकीर्ण समाज अपनी पूरी तैयारी के साथ बैठा है। उसे मीरा की अभिव्यक्ति में जरा से विचलन की गुंजाइश मिल जाये तो वह निंदा और तिरस्कार का पहाड़ खड़ा कर सकता है। मीरा ने अपनी प्रेमोन्मत्तता को कहीं छिपाया नहीं है, किन्तु इस बेसुधी में भी संयम का वह आंतरिक अनुशासन है जिसके कारण मीरा स्वाधीन और समर्पित तो हैं किन्तु उच्छृंखल नहीं हैं। उनकी प्रणय भावना के ऐन्द्रिक चित्रण में भी सात्विक और दिव्य रंग उभरे हैं। श्रीकृष्ण छवि, लीला या प्रेम के चरम अनुभव से परिपूर्ण मनोदशाओं की अभिव्यक्ति के संदर्भों में उनकी भाषा की बिंब निर्माण क्षमता अद्‌भुत है। वस्तुत: अर्थ समृद्ध भाषा का सबसे उपयोगी औजार बिंब होते हैं। इन्हें प्राय: कवि की क्षमता का निर्णायक समझा जाता है। मीरा की भाषा के लिए समूचा पदार्थ भावनात्मकता या कल्पना का है। मीरा का भावजगत ठोस न होकर सूक्ष्म और तरल है। ऐसे में अमूर्तन के खतरे बढ़ जाते हैं, किन्तु मीरा के भाव प्रत्यक्ष जगत के रंग-रूप रसगंध से संयुक्त होकर प्रत्यक्ष हो उठते हैं। भाषा इन्हें अस्पष्ट या तारतम्यहीन नहीं रहने देती। उनके पदों से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें भाषा भावों की सूक्ष्मता को उजागर करने के लिए नाटकीय गत्वर चित्रों का विधान करती है। जैसे --

गहे द्रुम डारि कदम की ठाड़ो मृदु मुस्काय म्हारी ओर हंसो

अथवा

णेणाँ बणज बसावाँ री, म्हारा साँवरा आवाँ। ।टेक। ।
णेणाँ म्हाराँ साँवरा राज्याँ, डरता पलक णा लावाँ।

अथवा

म्हाँ ठाढ़ी घर आपणे मोहन निकल्याँ आय।
बदन चंद परगासताँ, मंद मंद मुसकाय।

इस प्रकार मीरा सूक्ष्मतम भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी गति और मुद्राओं के नाटकीय प्रयोग करती हैं जिनसे उनका कथन और मार्मिक तथा संवेद्य हो उठता है। जैसे---

दरद की मारयां दर-दर डोल्या बैद मिल्यां णा कोय

जैसी पंक्तियों में उनकी यह शक्ति देखी जा सकती है। मीरा की भाषा में शब्द ध्वनि सक्षम है। वे उनके भाव-जगत को बाह्य जगत के जीवन रव से जोड़ देते हैं। उनके सूक्ष्म भावों का अन्त:स्वर तो रसमय जगत का संपूर्ण रूप रचता ही है, साथ ही नाना ऋतुयें, तीज, त्यौहार, पर्व, संध्या, दिन, रात, पशु-पक्षी आदि भी एक अनूठे ध्वनि सौन्दर्य का विधान करते हैं। यहां भी मीरा ने लोकस्मृति के जीवित और गतिशील को सहज ही अपना लिया है। दादुर, मोर, पपीहा के स्वर और भूमिकायें वहीं हैं। 'प्रेमनी' और 'विरहिणी' के प्रति उनके निश्चयों में कोई अंतर नहीं आया है।

मीरा की भाषा में सर्वाधिक अद्‌भुत व्यंग्य की आंतरिक धार है। देशकाल के विषम, विडंबनापूर्ण अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए मीरा इनका उपयोग करती हैं। यहां उनके आवेश का आंतरिक थिराव व तीक्ष्णता असाधारण है। ये प्रसंग प्राय: राजसत्ता, छद्‌म कुल मर्यादा के प्रति संरक्षणशील समाज और स्त्री पराधीनता से संबद्ध हैं। एक स्थान पर वे दुर्मति राणा को धिक्कारती हुई कहती हैं -

अपणे घर का परदा करले, मैं अबा बौराणी

ऐसा ही एक प्रसंग 'राजसत्ता' के अन्तर्विरोधों को लक्ष्य करने का है जहां वे विधि के विडंबनापूर्ण विधान के आश्रय से यह सत्य उद्‌घाटित करती हैं। कहती हैं --

विध विधणा री ण्यारां
दीरघ नेण मिरघ कूं देखां कणलण फिरतां मारा।

वगैरह। प्रीति निर्वाह के प्रति बेखबर अपने प्रियतम 'जोगिया जी' की खबर लेने के प्रसंगों में भी मीरा की व्यंग्य क्षमता और उक्ति चातुर्य पहचाना जा सकता है। जहां तक भाषा में अलंकरण का प्रश्न है तो मीरा की भाषा में शब्दालंकारों या अर्थालंकारों के कई प्रयोग हैं, किन्तु मीरा इन प्रयोगों के प्रति बहुत सचेतन या आग्रही नहीं है। वैसे उनकी भाषा में रूपक, उपमा या उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिल जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि मीरा की भाषा की सहजता के मूल में उनकी सहज अंकुठ जीवनानुभूति की शक्ति है। मीरा ने भावनाओं की गहराई का जीवन जिया है, उनके स्वप्न भी अरूप या जटिल नहीं हैं, न उनके राज जगत में कोई उलझाव है। इसलिए भाषा की सहज संवेद्यता मीरा के लिए कठिन नहीं है। यह उनसे ऐसे ही अनायास सध गयी है जैसे कठिन बाधाओं के बावजूद उनकी भक्ति और अनुरक्ति सधी है। उनकी काव्य भाषा में सहजता और निरलंकृति आंतरिक और अनुभव समृद्ध काव्य मूल्य के रूप में विकसित हुए हैं। इस दृष्टि से मीरा की कविता बेजोड़ है।

12.5 मीरा की कविता का शिल्प विधान

प्गीत आत्मपरक काव्य की विशिष्ट संरचना है। मीरा ने आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रगीतात्मक मुक्तक पदों के शिल्प का चुनाव किया है। वस्तुत: प्रगति के शिल्प का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास कृष्ण भक्त कवियों की काव्य रचनाओं द्वारा प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण का लीलामय सुन्दर स्वरूप ही नृत्य, संगीत, गीत,

चित्र और मूर्तिकलाओं का स्रोत है। कृष्ण भक्त कवि अपनी काव्य प्रक्रिया में इन समस्त कलाओं की संकल्पनाओं का सुन्दर उपयोग करते हैं। श्रीकृष्ण की छवि, उनकी मुद्रायें, उनके पदक्षेप और चितवन आदि समस्त हाव-भाव इन कलाओं की अभिव्यक्ति क्षमता के उपयोग से एक समग्रतामूलक कलात्मक अन्विति बन कर प्रस्तुत होते हैं। वहां निहित भाव, कथ्य, घटना या प्रभाव आदि इनके संयोग से अधिक संश्लिष्ट तथा ललित हो ज़ाते हैं। काव्य और इन कलाओं के बीच संबंध परस्पर पूरक और प्रेरक है। यही कारण है कि कृष्णचरित केवल काव्य का विषय नहीं है, मध्यकाल में विकसित होती हुई चित्रकला और मूर्तिकला ने इसे महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति दी है। जयदेव का 'गीत गोविंद', विद्यापति के कृष्ण भक्ति विषयक पद, सूर का काव्य आदि मध्यकाल से आज तक भितिचित्रों, पेंटिंग्स और मूर्तिकला आदि का सहज-स्वीकृत विषय है।

कोई भी काव्य रूप मात्र संरचना नहीं है, अपितु वह एक समग्र अन्विति है, जिसके अन्तर्गत अन्तर्वस्तु, संवेदना और अभिव्यक्ति विधि का आंतरिक सामंजस्य होता है। किसी भी कलाकृति में उसके विधायक तत्वों का आंतरिक संयोजन या संश्लेषण महत्वपूर्ण होता है। इन तत्वों की परस्पर आंतरिक अनुकूलता के द्वारा ही कला के समग्र प्रभाव की सृष्टि होती है। काव्य की यह प्रक्रिया बहुत सक्ष्म और आंतरिक है तथा यह पूरी तरह से रचनाकार की अनुभव समृद्धि, प्रतिभा और कलाविवेक पर निर्भर है। कृष्ण भक्ति के द्वारा मीरा को भावसमृद्धि और आत्मविस्तार ही नहीं प्राप्त हुए, अपितु उनका भावलोक सम-विषम जीवन के अनुभवों से संपन्न हुआ। जीवन और जगत को देखने-समझने की उनकी दृष्टि वस्तुपरक होती गयी। मीरा विदुषी तो थी हीं। उन्हें विविध कलाओं को जानने-समझने का परिवेश भी मिला था। उनका अनुभव जगत सामंती राजघराने से लेकर लोक जीवन तक फैला हुआ था। लोक और शास्त्र के द्वन्द्व को समझने का सर्वाधिक संभावनापूर्ण परिवेश मीरा को ही प्राप्त था। ये अनुभव उनके आत्मसंघर्ष से अभिन्न थे किन्तु ये मीरा का बंधन न होकर उनके विकास और आत्मप्रसार का कारण बने। यही कारण है कि मीरा का काव्य आत्मपरक तो है किन्तु वैयक्तिकता की सीमाओं में आबद्ध अमूर्त या रहस्यात्मक नहीं है।

इस प्रकार मीरा प्रगीतात्मक चेतना की रचनाकार हैं। उनके पदों में भावों, स्थितियों या मनोदशाओं की विरूद्ध स्थितियों के बीच नाटकीय द्वन्द्व और तनाव का संबंध है, किन्तु अपनी रचना प्रक्रिया में वे रचना के आंतरिक अवयवों को परस्पर अनुकूलता में साधती हुई आकांक्षित परिणति या निष्कर्ष तक ले आती हैं। उनका प्रत्येक पद एक अखंड इकाई है जिसके अन्तर्गत उनका सत्य अनुभूति और अभिव्यक्ति के अन्तर्बाह्य अवयवों से रचनात्मक संगति के लिए प्रयत्नशील है।

मीरा के पदों में सघन व तीव्र आत्मानुभूतियों का प्रकाशन महत्वपूर्ण है। इन अनुभूतियों का संबंध उनकी रूपासक्ति, अनुरक्ति, भक्ति और जीवन संघर्ष से है। ये भाव परस्पर संयुक्त होकर भी आये हैं। इस प्रकार मीरा के पास व्यापक अनुभव संदर्भता से युक्त कथ्य है। यह कथ्य पद के संक्षिप्त कलेवर में विकसित और निर्णीत होता है। इसीलिए उनकी भाषा पर उनकी गहरी अनुभूतियों, मनोदशाओं आदि की अभिव्यक्ति का बड़ा भार आ जाता है। चूंकि अलंकारों को मीरा ने भाषा की आंतरिक शक्ति के रूप में नहीं लिया है और न ही वे इन पर अनावश्यक रूप से निर्भर हैं इसलिए वे शब्दों की व्यापक अर्थसन्दर्भता, सांकेतिकता और व्यंजकता से काम लेती हैं। प्रगीतात्मक पदों की आंतरिक अन्विति में लयों की विशेष भूमिका है। मीरा के शब्द इन लयों के अनुरूप तराशे जाते हैं। मीरा ने शब्दों के बहुविध प्रयोग किये हैं। इस दृष्टि से हम उनके पदों में एक ही शब्द के कई रूप देख सकते हैं। ऐसा वे प्राय: लय के निर्वाह के लिए करती हैं। यह लयात्मकता मीरा के पदों की बाह्य गति मात्र नहीं है अपितु आंतरिक अनुशासन है। इसके द्वारा भावों की मार्मिकता और लालित्य में निखार आता है। मीरा के पदों की प्रथम पंक्ति, जो प्राय: टेक के रूप में निरंतर आवृत्ति के लिए है, ही उस पद में उनका मुख्य वक्तव्य या मूल कथन होती है। अन्य पंक्तियां या तो उसके अर्थ का विस्तार करती हैं या उसका ही अनुगमन करती हैं। अंतिम पंक्ति में मीरा पूरे पद में विन्यस्त कथ्य, भाव या घटना को सम पर ले आकर उसे आकांक्षित परिणति देती हैं। मीरा का परम आकांक्षित उनका आत्मनिवेदन ही है जो अधिकतर पदों में अंतिम पंक्ति तक आकर यह आत्मनिवेदन बहुत संकेन्द्रित और प्रत्यक्ष हो जाता है। यहां मीरा अपने नामोल्लेख के साथ प्राय: गिरधर नागर के प्रति निवेदित होती हैं। कुछ पदों में वे कथ्य को बहुत गहरे अनुभव या युग सत्य तक विकसित करती हैं।

मीरा ने समाज के अन्तर्विरोधों को केवल अपनी पीड़ा या संघर्ष के कोण से नहीं देखा है। उनकी दृष्टि वस्तुपरक है और वे युग सत्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य में ही देखती हैं।

'आत्मानुभूति' को प्रगीत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। मीरा की समस्त रचनाशीलता का प्राणतत्व यही आत्मानुभूति है। आत्मपरकता, तीव्र भावनात्मकता आदि तत्व इस आत्मानुभूति से अभिन्न हैं। लयात्मकता प्रगीत का नियामक तत्व है तथा इस लय का संबंध भाव और भाषा दोनों से है। शब्दों के आंतरिक स्वर व संगीत का संधान किये बिना इस लयात्मकता का निर्वाह संभव नहीं। हमने देखा है कि मीरा इस लयात्मक अन्विति के प्रति कितनी सावधान हैं। उनका प्रत्येक शब्द उनके चित्र की अनूठी ही नहीं, अपितु चित्र और मूर्तिकला की संकल्पनाओं के सर्जनात्मक संयोजन में रचे गये हैं। अपने पदों में प्रायः अरूप भावस्थितियों को जीवन-जगत के मूर्त कार्य व्यापारों और मुद्राओं से जोड़ती हुई मीरा उनकी गति व प्रकृति को लास्य और नाटकीयता में निर्मित करती हैं। हमें ज्ञात है कि मीरा न केवल अपने पदों को साधु समाज में गाया करती थीं, अपितु ताल-वाद्य के संयोग के साथ घुंघरू बजाती हुई नृत्य कर उठती थीं। उनके पदों में भावों और मनोदशाओं के चित्रों को किसी निपुण नृत्यांगना द्वारा पदक्षेप और मुद्राओं के द्वारा भाव बताने के संदर्भ में देखा जा सकता है। जैसे-

म्हाँरो जणम-जणम रो साथी, थाँने णा बिसर्‌या दिनराती। ।टेक। ।
था देख्याँ विण कल णा पड़ताँ जाणे म्हारी छाती।
ऊंच्या चढ़-चढ़ पंथ निहार्‌याँ कलप कलप अंखियाँ राती।

इस प्रकार इस पद में मीरा की तीव्र भावाकुलता नाटकीय संघातों से पूर्ण है। अवश्य ही मीरा ने इसे अपनी नृत्य मुद्राओं से सजा कर भी व्यक्त किया होगा। वस्तुतः लयात्मकता को मीरा ने एक आंतरिक अनुशासन के रूप में विकसित किया है। यही कारण है कि उनके पदों की बाह्य संरचना, छंद आदि की पूर्व निर्धारित मान्यताओं का अतिक्रमण भी करती है। मीरा के पद संगीत को एक प्रभावी आंतरिक मूल्य के रूप में विकसित करते हैं। संगीत के अनुशासन से मीरा के पद अपने चरम मार्मिक प्रभाव की सृष्टि कर लेते हैं। उनके पदों में संकेतित रागों की भावानुरूपता उल्लेखनीय है। मीरा की रचनाशीलता की मूल प्रकृति कोमल, और लास्यपूर्ण है। मीरा ने संगीत को ताल वाद्य और नाद की सम्पूर्णता में स्वीकार किया है। मीरा ने विविध राग-रागिनियों का उपयोग किया है जिनमें से राग झिंझोरी, राग मालकोस, राग पीलू, राग खम्माच, राग पहाड़ी, राग पूरिया कल्याण, राग दिलावल, राग दरबारी, राग होली, राग बागेश्वरी, राग श्याम कल्याण, राग प्रभाती, राग रोड़ी, राग भैरवी, राग विहाग, राग आसवरी, राग रामकली आदि का उल्लेख जरूरी है। छन्दों की तरह रागों की निर्दोषता के प्रति मीरा बहुत सचेष्ट नहीं हैं, किन्तु काव्य में लय के सहज विधान द्वारा वे इनका निर्वाह कर ले जाती हैं। यह कहा जा सकता है कि मीरा को गीत-संगीत और नृत्य के शास्त्रीय पक्ष का ज्ञान तो था ही साथ ही लोक प्रचलित कला रूपों में भी उनकी गति थी। वे इनके बीच सामंजस्य का संबंध खोजती हैं।

इस प्रकार प्रगीत और संगीत मीरा के काव्य की आंतरिक और सर्जनात्मक आवश्यकता है। इनके द्वारा उनका अर्थविधान अधिक लालित्यपूर्ण और संवेद्य हो उठता है। उनके पदों में अन्तर्निहित भावनात्मक तीव्रता, और वैयक्तिक किन्तु प्रत्यक्ष अनुभवों के संस्पर्श से संयुक्त होकर यह संगीत अनूठे भावलोक की सृष्टि करता है। वस्तुतः संगीत के बिना मीरा का गिरधर नागर से एकात्म अधूरा है। नाद, ताल और स्वर के द्वारा रचे गये वातावरण ने उनके आत्मनिवेदन को अवश्य ही विशिष्ट बनाया होगा।

12.6 सारांश

इस प्रकार मीरा की रचनाशीलता का संपूर्ण अन्तर्बाह्य स्वरूप उनकी सघन आत्मानुभूति से स्पंदित है। इस आत्मानुभूति का विषय - कृष्ण भक्ति है। कृष्ण के प्रति मीरा अपने एकनिष्ठ प्रेम के साथ निवेदित मात्र नहीं अपितु अपने इस अलौकिक आश्रय के सम्मुख वे अपने सुख-दुःख की गठरी खोल देती हैं। कृष्ण उनकी एकमात्र आशा और प्राप्य हैं। उनके हृदय में कृष्ण प्रेम के अलावा किसी भाव, चरित्र या

आकांक्षा के लिए स्थान नहीं है। कृष्ण प्रेम उन्हें संपूर्ण और उदात्त बनाता है। वे अपनी समस्त भावनाओं और संबंधों को कृष्ण में घटित होते दीखती हैं। कृष्ण प्रेम की शक्ति से ही मीरा संकीर्ण सामंती समाज के विष का सामना कर पायी हैं। श्रीकृष्ण चरित्र में पूर्ण तन्मयता चाहती हुई मीरा लौकिक जगत के छल-छद्म से क्षुब्ध तो हैं, किन्तु उनका सुख-दुःख गिरधर नागर को पाने और खोने से निर्धारित होता है। ऐसे प्रियतम से संयोग के गिनती के अनुभवों ने यदि मीरा को बेसुध किया है तो विरह के दीर्घ क्षणों ने उन्हें मरण के दुख की सीमा तक व्याकुल किया है। मीरा के भावजगत में मीरा ही मुखर और व्यक्त हैं। वे अनवरत प्रियतम पर रीझने और उन्हें रिझाने के प्रयत्न करती दिखाई देती हैं। गिरधर के मिलने, हंसने, बोलने के प्रसंग बहुत कम हैं। गिरधर की यह निष्ठुरता मीरा को सह्य नहीं। मीरा ने अपने प्रेम और विरह को नाना पारंपरिक और मौलिक उद्भावनाओं में व्यक्त किया है। मीरा की भाषा उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही सहज और संप्रेष्य है। उनके प्रायः दो सौ पदों को प्रामाणिक माना जाता है। ये पद प्रगीतात्मक और विविध राग-रागिनियों में विन्यस्त हैं। संगीत को मीरा ने प्रगीतात्मक शिल्प के आंतरिक अनुशासन के रूप में विकसित किया है।

इस प्रकार मीरा का काव्य उनके सहज अकुंठ व्यक्तित्व के समान जीवन राग से स्पंदित और निराडंबर है। इसमें भावों और अनुभूतियों की गहराई और वैविध्य से रूप लेती हुई वह समृद्धि है जो पूरी तरह से संप्रेष्य और संवेद्य है। सहज जीवनानुभवों में प्रत्येक निर्मल चित्त से एकात्म हो जाने की क्षमता होती है। यह क्षमता मीरा के काव्य में है।

12.7 शब्दावली

अभिसारिका - प्रिय से मिलने के लिए निर्दिष्ट स्थान पर जाने वाली स्त्री

गुलफाम - बहुत सुंदर

गैल - गली

दलित द्राक्षा - निचोड़ा हुआ अंगूर

विगलित - बिखरी हुई

निर्कुण्ठ - कुंठा रहित

12.8 अभ्यास/प्रश्न

(1) 'मीरा ने कृष्ण प्रेम को अपनी आत्माभिव्यक्ति के केन्द्रीय विषय के रूप में विकसित किया है।' कथन से अपनी सहमति-असहमति बतायें।

(2) मीरा के पदों के आधार पर उनकी अनुभूति की मार्मिकता और वैविध्य का निरूपण कीजिए।

(3) मीरा की भाषा के शक्ति स्रोतों का उल्लेख करते हुए उसका वैशिष्ट्य निर्धारित कीजिए।

(4) 'प्रगीत का शिल्प मीरा की आत्माभिव्यक्ति के लिए सर्वथा अनुकूल है'- कथन से आप कहां तक सहमत हैं।

(5) संगीत मीरा के काव्य का आंतरिक अनुशासक तत्व है, कथन की विवेचना कीजिए।